# हमने भारत पर कैसे विजय प्राप्त की

सर जे. आर. सिली

भूमिका

चौधरी चरणसिंह
चेयरमैन, दि किसान-ट्रस्ट, दिल्ली

प्रकाशक
किसान-ट्रस्ट, दिल्ली

# प्रकाशकीय

चौधरी चरणसिंह भारत के उन चंद देशभक्त तथा ईमानदार विचारकों में से एक हैं, जिनकी कथनी और करनी में कभी भी कोई अन्तर नहीं होता। राष्ट्र और लोक-हित के सवाल पर, वह, एक उत्कट देशभक्त के रूप में सोचते और निडर होकर अपनी बात कहते रहे हैं। व्यक्ति और दल के उज्ज्वल भविष्य का सवाल भी उनको, इस मार्ग से विचलित नहीं कर पाया है।

भारत की सभ्यता, संस्कृति और अतीतकालीन गरिमा के सामने प्रश्नचिह्न लगाने वाली तथा वर्तमान की स्वाधीनता एवं अखण्डता के सवाल को नजर-अंदाज करने वाली प्रत्येक बात पर उनकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। जे. आर. सिली के व्याख्यान पर, उनकी प्रतिक्रिया, उनके गंभीर देशभक्ति के चिंतन का परिणाम है।

'हाउ वी कॉनकर्ड इंडिया' नामक अपने व्याख्यान में सिली भारत के सम्पन्न अतीत को नकारता है, भारतीयों की वीरता का अवमूल्यन करता है, भारत को एक राष्ट्र के रूप में अस्वीकार करता है, उसकी सांस्कृतिक महत्ता को झुठलाता है और भारत पर अँग्रेजों की जीत को अंग्रेज कौम की साजिश, धोका और षड्यंत्र का परिणाम न बताकर, भारतीयों में देश तथा राष्ट्र की भावना के अभाव का परिणाम मानता है।

सर जे. आर. सिली की 'एक्सपैंसन ऑव इंगलैण्ड' नामक पुस्तक का, अपनी भूमिका के साथ प्रकाशन का, चौधरी साहब का लक्ष्य, भारतीय समाज में देशभक्ति का उदय, भारत की स्वाधीनता के प्रति लगाव और देश की एकता के लिए इतिहास से प्रेरणा लेना है।

सिली के अनुसार, भारत की पराधीनता के प्रमुख कारण भारतीय सामंतों के परस्पर संघर्ष, भारतीय जनता के धार्मिक तथा सामाजिक अन्तरविरोध और देश के लिए बाहरी खतरों के प्रति सबकी उदासीनता आदि थे। इनसे मिलती-जुलती आज की परिस्थितियाँ, चौधरी साहब को, देश के लिए अशुभ प्रतीत होती हैं। अतः वह चाहते हैं कि भारतीय जनता, अपने इतिहास के अभावों को समझें और उनसे प्रेरणा लेकर वर्तमान और भविष्य का निर्माण करे।

मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक, भारतीय जनता में देशभक्ति और भारतीयता की भावना जगाने में सहायक सिद्ध होगी। यदि ऐसा हो सका तो किसान-ट्रस्ट अपने श्रम तथा व्यय को सार्थक समझेगा।

**अजयसिंह**

मैनेजिंग ट्रस्टी, किसान-ट्रस्ट, दिल्ली

# भूमिका

ऐसा कहा जाता है कि राष्ट्रीयता की अवधारणा का जन्म समान भाषा, धर्म तथा समान जाति आदि कई अथवा किसी एक तत्व से होता है। व्यक्ति में एकता का गुणऔर समानता की भावना का अस्तित्व उसको एक राष्ट्र का रूप प्रदान कर देता है। भारतीय जनता को आपस में जोड़नेवाले इन मूल तत्वोंमें से किसी एक के अभाव ने, लगभग 2500 वर्षोंके दीर्घकाल तक, विभिन्न आक्रमणकारियोंकी बार-बार दासता में इस देश को पहुँचाया। प्रायः इस प्रकार की पराधीनता, बाहर से आनेवाले, आक्रान्ता समूहों के कारण हुई। ये आक्रमणकारी समूह अधिकतर बहुत छोटे होते थे, जिन्होंने अपने हित में हमारे समाज के आन्तरिक विभाजन का लाभ उठाया। सिकन्दर से लेकर महमूद गजनी तक और बाबर से लेकर रोबर्ट क्लाइव तक भारत की हार के कारण स्पष्ट रूपसे समान थे। महात्मा गान्धी तथा अन्य नेताओं की प्रेरणा से देश में महान् जागरण पैदा हुआ, जिसने देशभक्ति की भावना जगाई, राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया और देश से शताब्दियों पुराने विदेशी शासन का अन्त करने के लिए अनुप्रेरित किया।

प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहास-वेत्ता सर जे. आर. सिली, लिट-डी., के. सी. एम. जी. ने अपने 1883 के धारावाहिक व्याख्यानों में, विशुद्ध रूप से, दो विषयों पर प्रकाश डाला था--अंग्रेजों ने भारत किस प्रकार जीता, और उसके व्याख्यान-काल तक उस पर अपना अधिकार किस प्रकार बनाये रखा? यह ब्रिटिश सत्ता का सर्वोच्च काल था। इतिहासकार सिली, इतिहास में विख्यात महान् शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य जिसकी सीमा में कभी सूर्य छिपता हुआ नहीं दिखायी देता था, के इंग्लैण्ड द्वारा विस्तार का वर्णन कर रहा था। ब्रिटिश जनता के लिए यह विश्वास करना नितांत स्वाभाविक था कि इस साम्राज्य की स्थापना उन्होंने अपनी जातीय श्रेष्ठता, अधिक बुद्धिकौशल तथा साहस के बल पर की है। फिर भी, सिली निरपेक्ष भाव के साथ भारत पर ब्रिटिश अधिकार के कारणों का विश्लेषण करता है, उदाहरण के लिए ये कारण हैं—केन्द्रीय मुगल-सत्ता का बिखराव, आपस में लड़ते हुए स्थानीय सामन्तों का उदय, और अपने शासकों से जातीय, भाषागत तथा धार्मिक विद्वेष के कारण पूर्णतः अलगावित जनता। वह स्पष्ट रूप से बताता है कि किस तरह थोड़े से अंग्रेजों ने, अधिकांश भारतीयों की मदद से, एक सामन्त को दूसरे सामन्त से लड़ाकर

अन्त में सबकोपराधीनता की जंजीरों में जकड़ दिया था। यथार्थ में 1757 से 1857 के सौ वर्ष लम्बे समय में कम्पनी की सेना में 16 प्रतिशत से अधिक अंग्रेज सिपाही कभी नहीं रहे। जैसा कि सिली बताता है—'भारत को विदेशियों द्वारा जीता हुआ शायद ही कहा जा सकता है, यह कहना अधिक संगत है कि खुद भारतीयों ने ही भारत को जीता था।'

सर जे. आर. सिली की पुस्तक 'एक्सपैंसन ऑव इंग्लैण्ड' (प्रथम संस्करण 1883, मैकमिलन एण्ड क० लिमि० लंदन, 1911 संस्करण) के दो अध्यायों का पुनर्मुद्रण करके किसान ट्रस्ट को विश्वास है कि पाठक वर्ग उन कारणों को भली प्रकार समझने की स्थिति में होगा, जिनके कारण हमारा देश, विदेशी लुटेरों का इतना आसान शिकार बन गया। आज भी, एक नहीं अनेक प्रकार की, वे समान परिस्थितियाँ, हमारे देश में वर्तमान हैं, जिनके कारण हमारा देश विदेशी सत्ता के सामने पराधीन हो गया था। आज की परिस्थितियों में केन्द्रीय सत्ता देश को सुशासित तथा नियन्त्रित करने की दिशा में उदासीन है अथवा अयोग्य है, इसलिए देश में एक कोने से दूसरे कोने तक तोड़-फोड़ करनेवाली अथवा विभाजित करने वाली प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं और विदेशी शक्तियाँ इन विषम परिस्थितियों से लाभ उठाने की प्रतीक्षा में बैठी हैं। आज, कहीं तो देश में साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं, कहीं पृथकतावादी तत्व सिर उठा रहे हैं, कहीं अराजकतावादी तत्व सक्रिय हो रहे हैं, कहीं देश की सुरक्षा से सम्बन्धित बहुमूल्य जानकारी बेची जा रही है, कहीं भ्रष्टाचार तथा तस्करी का बाजार गर्म है तो कहीं जनता भूख तथा प्यास से विपन्न है। देश की एकता, समृद्धि और प्रगति की ओर से उदासीन होकर नेता लोग अपने अस्तित्व की रक्षा में संलग्न हैं। देश बिघटन के कगार पर खड़ा है और हम लोग अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। यह ऐसी स्थिति है, जिसकी ओर देशवासियों का ध्यान आकर्षित होना बहुत आवश्यक है। सम्भवतः इन पृष्ठों को पढ़कर हमारे देशवासी इस तथ्य को भली भाँति समझ सकेंगे कि आजादी के सैंतीस वर्ष बाद भी हम अपनी कल्पना का भारत—सुदृढ़, संगठित एवं समृद्धिशाली—बनाने में क्यों असफल हुए हैं? मेरा विचार है कि हम अपनी कमजोरियों को भली प्रकार समझ कर ही इन अभावों का निवारण कर सकते हैं। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर किसान ट्रस्ट यह पुस्तक अपने पाठकों के हाथों में पहुँचा रहा है।

**—चौधरी चरणसिंह**
चेयरमैन,
**किसान-ट्रस्ट, दिल्ली**

## हमने भारत पर कैसे विजय प्राप्त की

यह सवाल कि हमने भारत पर किस प्रकार विजय प्राप्त की, उस विषय से बिल्कुल भिन्न है, जिस पर मैंने अपने पहले व्याख्यान[1] में प्रकाश डाला है। निश्चित रूप से, हमारे उपनिवेशवादियों ने नयी दुनिया[2] में, एक बहुत बड़े भू-भाग पर अधिकार कर लिया था, किन्तु तुलनात्मक रूप से यह एक खोखला भूभाग था। इस भूभाग को जीतने के दौरान, वहाँ के मूल-निवासियों की ओर से, इतनी परेशानियाँ पैदा नहीं की गईं, जितनी कि अन्य योरोपियन देशों की आपसी प्रतिद्वन्द्विता के कारण उत्पन्न हुई थीं।

आंशिक तौर पर, मैं इस संबंध में, विचार प्रकट कर चुका हूँ कि हमने किन कारणों से और किस सीमा तक, इन प्रतिद्वन्द्वियों पर विजय हासिल की थी। एक समय, इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट नहीं था, किन्तु साथ ही उत्तर पा लेना बहुत कठिन कार्य भी नहीं था। किन्तु दूसरी ओर, प्रारम्भ में, यह प्रश्न बहुत ही उलझन भरा हुआ था कि हम लोग भारत को किस प्रकार जीत सके? यहाँ जन-संख्या अत्यन्त घनी थी, यहाँ की संस्कृति यद्यपि विभिन्न धाराओं में पतन की ओर जा रही थी, किन्तु हमारी संस्कृति के समान ही वह वास्तविक तथा पुरातन थी।

योरोप के इतिहास की कई घटनाओं से हमने यह सोचना सीख लिया है कि अपने आक्रमणकारियों से भाषा तथा धर्म में पूरी तरह भिन्न बुद्धिजीवियों को जीत लेना प्रायः असम्भव होता है। स्पेन की पूरी ताकत, आठ वर्ष की घनघोर लड़ाई

---

1. पुस्तक की भूमिका देखें।
2. 15 वीं सदी के बाद व्यापारी तथा धर्मप्रचारक। योरोपियन अन्वेषकों द्वारा खोजी गई यरोप से अलग की दुनिया।

के बाद भी, थोड़ी सी आबादी वाले डच-प्रदेश को नहीं जीत सकी थी। पुरातन काल में स्वीडन के लोगों को भी नहीं जीता जा सका था और बाद में न ग्रीक के रहने वालों पर जीत हासिल की जा सकी थी।

भारत को जीतने की दिशा में, जिस समय हमने पहली सफलता प्राप्त की थी, उसी समय हमने अमेरिका में बसी अपनी जाति के तीस लाख लोगों को, जिन्होंने इंग्लैण्ड के ताज[3] के प्रति अपनी भक्ति को उतार कर फेंक दिया था, अनुशासन के अन्तर्गत लाने में पूरी तरह विफलता का मुँह देखा था। यह कितनी बड़ी विषमता है! इंग्लैण्डवासियों ने, इस अमेरिकन-युद्ध से पहले, इतनी निर्जीव अयोग्यता का प्रदर्शन कभी नहीं किया था। इस विफलता को देखकर स्पष्ट रूप से यह जाहिर होने लगा था कि उनकी महानता का समय खत्म हो गया है और अब इंग्लैंड का पराभव प्रारंभ हो चुका है। लेकिन ठीक उसी समय, भारत में वे अपराजेय हमलावार सिद्ध होते जा रहे थे और इस प्रकार की श्रेष्ठता दिखा रहे थे, जिससे उनको एक वीर राष्ट्र के नागरिक होने की गौरवपूर्ण अनुभूति का आभास होने लगा था। इस विषमता का स्पष्टीकरण किस प्रकार किया जा सकता है?

इतिहास का अध्ययन इतने हलकेपन के साथ किया जाता है, इतनी सामान्य इच्छा तथा विश्वास के साथ किया जाता है कि किसी ठोस परिणाम पर नहीं पहुँच जाता और अन्तरविरोध ज्यों की त्यों आगे की ओर खिसकते रहते हैं, और अन्त में एक ऐसी विजयसूचक अनुभूति पर पहुँचा देते हैं कि आखिरकार हम में अभी भी जीवन है, ताकत बाकी बची है, और इस प्रश्न का उत्तर कितना ही कठिन हो, लेकिन यथार्थ में ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि हममें अभी जीवन बाकी है। भारत में अनेक बार, प्लासी,[4] असाय तथा अन्य दूसरे युद्ध-स्थलों पर अनेक रुकावटों के बाद भी हमारी सेनाएं विजय प्राप्त कर सकी थीं। इन सबसे, कम-से-कम यह सहज प्रतीत होता है कि हम अपने राष्ट्रीय आत्म-

---

3. लौज्किटन मैसाचूसेटस में 19 अप्रैल 1775 को अमेरिका का स्वाधीनता-संग्राम प्रारम्भ हुआ था और वास्तव में लार्ड कार्नवालिस द्वारा 19 अक्टूबर 1781 को यार्कटाउन वर्जीनिया में आत्मसमर्पण कर देने के साथ समाप्त हो गया था। इस लड़ाई के कारण, एटलांटिक समुद्रतट पर स्थित इंगलिश उपनिवेश अपनी मातृभूमि से निश्चित रूप से अलग हो गये थे। ऐतिहासिक दृष्टि से, यह अमेरिकन स्वाधीनता-आन्दोलन के रूप में जाना जाता है।
4. प्लासी की लड़ाई 1957 ई. में लड़ी गयी थी। इसमें रोवर्ट क्लाइब के नेतृत्व में एक छोटी-सी फौज ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दोला की विशाल सेना को पराजित किया था और फलतः अंग्रेजों का भारत में अधिकार होना प्रारम्भ हुआ।

सन्तोष की भावना पर प्रसन्न हो सकते हैं और यह अनुभव कर सकते हैं कि हिन्दू[5] जाति की समता में, हम लोग, वास्तव में भयानक प्राणी हैं।

इस परिकल्पना से क्या वास्तव में कठिनाई का निवारण हो जाता है? मान लीजिए एक अंग्रेज यथार्थ में दस अथवा बीस हिन्दू सैनिकों के बराबर है, इस स्थिति में भी, क्या हम सोच सकते हैं कि समस्त भारत को अंग्रेज-सैनिकों ने जीता था? जिस समय भारत में इंग्लैण्ड की विजय का प्रारम्भ हुआ था, उस समय भारत में बारह मिलियन अंग्रेज-सैनिकों से अधिक सिपाही वहाँ नहीं थे। भारत में, हमारी जीत की शुरूआत उस समय हुई थी, जब कि इंग्लैण्ड को और दूसरी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ रहीं थीं। लार्ड क्लाइव के समय का एक भाग योरोप के सात वर्षीय युद्ध-काल की सीमा के अन्तर्गत आता है और भारत के देशी राज्यों का लार्ड बेलेजली द्वारा अधिकार में लाने का समय, नेपोलियन के साथ हमारे संघर्ष के दौरान का है।

हमारा देश एक सैनिक राष्ट्र नहीं है। उस समय, हम लोग, इस स्थिति में भी नहीं थे कि यह कह सकें कि हम लोग किसी भी समय एक त्वरित सेना भेज सकते हैं। यही कारण है कि हम अपनी योरोप की लड़ाइयों में प्रायः अपनी जल-सैनिक-टुकड़ियों तक ही सीमित रहे और स्थल पर होने वाली लड़ाइयों में हमारी नीति उपलब्ध मित्र सैनिक राष्ट्रों को सहायता प्रदान करने की रही। एक समय हमने आस्ट्रिया को मदद दी और दूसरी बार पर्शिया को। अपनी भूमि पर, इस कमजोरी के बाद भी, इस काल में, हम भारत के बहुत बड़े भाग पर विजय पाने की व्यवस्था कर सके। भारत जो लगभग दस लाख वर्गमील का क्षेत्र है और जिसमें लगभग बीस करोड़ व्यक्ति रहते हैं।

इस प्रकार के काम से हमारी सैनिक शक्ति का कितना क्षय हुआ होगा, हमारे खजाने का कितना व्यय हुआ होगा, फिर भी इस अपव्यय के विषय पर विचार नहीं किया गया प्रतीत होता है। हमारे द्वारा योरोप में लड़ी गयी लड़ाइयों ने हमको इतने कर्जे से लाद दिया था जिसको वापिस करने में हम कभी समर्थ नहीं हो सके। लेकिन हमारे भारत के युद्ध ने, हमारे राष्ट्रीय कर्ज को नहीं बढ़ाया। भारत में हमको जितनी मेहनत करनी पड़ी उसका कोई प्रभावचिह्न पीछे बाकी नहीं रहा।

## भ्रान्त अवधारणा

हमारे देश में, एक विचार फैला हुआ है कि इंग्लैण्ड से एक निश्चित संख्या में सिपाही भारत में पहुँचे और उन्होंने भारतीय सैनिकों की अपेक्षा, शक्ति तथा बुद्धि

---

5. पाठकों को यह समझ लेना चाहिए कि लेखक आमतौर पर भारतीयों के लिए हिन्दू शब्द का प्रयोग करता है।

में अधिकता के बल पर, भारत को जीत लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवधारणा में अवश्य कुछ भ्रान्ति है। सन् 1818 की अन्तिम मराठा-लड़ाई में, मेरा अनुमान है कि लड़ाई के मैदान में, हमारे पास, कुल कुछ हजार आदमी थे। लेकिन इससे क्या हुआ? यह प्राणघातक थकान का समय था, जिसके बल पर नैपोलियन के विपरीत लड़ाई जीती गयी थी। क्या यह सम्भव है कि वाटरल्[6] के केवल तीन वर्ष पश्चात् ही, एक बहुत बड़े पैमाने पर, हमको भारत में लड़ाई लड़नी पड़ी और लार्ड वैलिंग्टन के पास स्पेन में जितनी सेना थी, उससे कहां अधिक फौज भारत में वर्तमान थी। भारत में युद्ध के इन क्षणों में भी इस्तेमाल की गयी फौज दो सौ हजार थी। दो सौ हजार सैनिक जहाँ युद्ध में लगे हों, फिर भी हमारे देश को सैनिक राष्ट्र न कहा जाय, कितना आश्चर्य है?

आपने भली प्रकार देखा कि मैं जिस तथ्य की ओर संकेत करना चाहता हूँ, वह यह है कि यह विशाल सेना केवल इंगलिश सैनिकों की ही नहीं थी, इसमें मुख्य रूप से स्थानीय सैनिक शामिल थे, हम सभी इस सच्चाई से अवगत हैं। दो-लाख सैनिकों में से सिर्फ 65,000 यानी एक तिहाई से कम सैनिक अंग्रेज थे, और सैनिकों का यह अनुपात भी सिपाही-विद्रोह[7] के बाद स्थापित हुआ है। इस भयंकर विपत्ति के बाद अंग्रेजी सेनाएँ बढ़ा दी गयी थीं और संख्या की दृष्टि से मूल निवासियों की सेना कम कर दी गयी थीं। इस प्रकार मेरी दृष्टि में, सिपाही-विद्रोह के समय 235,000 भारतीय सैनिकों में से 45,000 अंग्रेज-सैनिक थे, यानी स्थानीय सैनिकों की समता में पाँचवे भाग से भी कम थे। सन् 1808 में भी मेरा खयाल है कि 130,000 स्थानीय सैनिकों में से 25 000 यानी पाँचवे भाग से भी कम अंग्रेज सैनिक थे। रेग्यूलेटिंग एक्ट के समय 1773 में जबकि यथार्थ में भारत पर इंग्लैण्ड का अधिकार स्थापित हुआ था भारतीय तथा अंग्रेज सैनिकों का यही

---

6. फ्रांस का सैनिक-प्रतिभावान् नैपोलियन कोर्सिका के अजाक्सिया नामक स्थान पर 15 अगस्त, 1769 में पैदा हुआ था और 5 मई 1821 में मृत्यु को प्राप्त हुआ था। वह 1804 से 1814 तक तथा 1815 में केवल सौ दिन के लिए फ्रांस का सम्राट रहा था। वह ब्रिटेन तथा उसके मित्र राष्ट्रों की सम्मिलित सेनाओं द्वारा, जिनका नेतृत्व लार्ड वैलिंग्टन ने किया था, वाटरल् नामक स्थान पर हराया गया था।

7. भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम जिसको ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा भारत में सन् 1857 का सिपाही-विद्रोह बताया गया है।

अनुपात था। उस समय ईस्ट इण्डिया[8] कम्पनी की सेना में 9000 यूरोपियन तथा 45,000 मूल-निवासी सैनिक थे। इससे पहले, यह अनुपात और भी कम अर्थात् सातवाँ था। यदि हम, कुछ और पहले की हालत पर विचार करें तो हमको मालूम होगा कि भारतीय सेना, योरोपीय न होकर, केवल मूल-भारतीय सैनिकों से ही बनी थी।

यही कारण है कि कर्नल चेनी इसके विषय में अपना ऐतिहासिक मत इस प्रकार प्रारम्भ करता है—"कम्पनी द्वारा भारतीय सेना-निर्माण की तारीख सन् 1748 में खोजी जा सकती है, जब कि फ्रान्सीसियों द्वारा प्रस्तुत किये गये उदाहरण के आधार पर, मद्रास में, एक छोटी-सी सेना की रचना की गयी थी। उसी समय, एक योरोपियन सेना की छोटी-सी टुकड़ी की संरचना, फालतू नाविकों तथा कुछ अपराधों के कारण इंग्लैण्ड से निकाले गये तथा कम्पनी के जहाजों पर भारत आये, अपराधियों में से की गयी थी।

कम्पनी द्वारा लड़ी गई प्रारम्भिक लड़ाइयाँ, जिनके कारण आरकट, प्लासी तथा बक्सर आदि की घेराबन्दी के बाद उसकी शक्ति तथा अधिकार की निश्चित रूप से स्थापना हो गयी थी, प्रायः हमेशा ही कम्पनी की सेना में, योरोपियनों की अपेक्षा, भारतीय सिपाही अधिक थे; और हम यह भी कह सकते हैं कि हमने कभी यह नहीं सुना कि ये भारतीय सिपाही युद्ध की कला में अकुशल थे अथवा लड़ाई के मैदान में, युद्ध की आग की लपटों से, इनकी अपेक्षा अंग्रेज सिपाही अधिक झुलसे थे। हमारे इतिहासकारों द्वारा अभिव्क्त इस राष्ट्रीय गर्व को जो आदमी बालकोचित कहता है, वह इस तथ्य पर आश्चर्य चकित नहीं होगा कि इन युद्धों के वर्णन प्रस्तुत करते समय हमारे इतिहासकार, भारतीय सैनिकों को पहचानने में असमर्थ प्रतीत

---

8. सत्तरह तथा अठारहवीं शताब्दी में भारत तथा सुदूर पूर्व के देशों के साथ व्यापार के शोषण-हेतु स्थापित एक कम्पनी। इस प्रकार की कंपनियाँ इंग्लैंड, डच, फ्रांस, डेनमार्क, स्पेन, आस्ट्रिया और स्वीडन आदि ने स्थापित की थीं। इन कम्पनियों में इंग्लैण्ड द्वारा स्थापित ईस्ट इण्डिया कम्पनी सबसे बड़ी थी। सितम्बर 1599 में लन्दन के एक व्यापारी-समुदाय ने, एक संगठन की स्थापना ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नाम से; ईस्ट इण्डिया कहे जानेवाले देश के साथ स्वतन्त्र रूप से सीधे व्यापार करने के लिए मसालों के व्यापार में, डचों के एकाधिकार को समाप्त करने के उद्देश्य से, की थी। इस कम्पनी ने भारत के विशाल भूभाग पर अपना अधिकार इस सीमा तक फैलाया कि वह यथार्थ में इसका औपनिवेशिक शासक बन गयी। सन् 1857 में, जब लन्दन की सरकार ने, अपना सीधा प्रभाव यहाँ स्थापित कर लिया था, उसके बाद इस कम्पनी को समाप्त कर दिया गया।

नहीं हैं। उदाहरण के लिए क्लाइव पर लिखा मैकोर्ल का लेख पढ़ा जा सकता है। उसमें कहा गया है—हर स्थान पर इमपीरियल सैनिक थे; 'समुद्री क्षेत्र की बलशाली सन्तान थी, और क्लाइव तथा उसकी अँग्रेजी-सेना को कोई रोक नहीं सका था।

यदि एक बार यह स्वीकार कर लिया गया कि भारतीय सैनिक हमेशा ही योरोपियन सैनिकों की अपेक्षा संख्या में अधिक थे और एक सैनिक के रूप में योग्यता की दृष्टि से, वे अँग्रेज-सैनिकों की बराबरी कर रहे थे, तो वह सिद्धान्त; जो हमारी सफलता का सम्बन्ध हमारी असीमित श्रेष्ठता के साथ जोड़ता है, भूमिसात हो जाता है। जिन लड़ाइयों में हमारे सैनिक मूलनिवासियों के अनुपात में दसवाँ भाग थे, यदि हम कहें तो ऐसा प्रतीत होगा कि एक अँग्रेज सैनिक ने दस मूल सैनिकों के बराबर कार्य किया था। हम यह भी कह सकते हैं कि एक स्थानीय सैनिक ने भी वही काम किया था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निश्चय ही दोनों में एक प्रकार का अन्तर है, किन्तु यह अन्तर जाति का अन्तर नहीं है, वरन् अनुशासन का अन्तर है, सैनिक-विज्ञान की जानकारी का अन्तर है, और निस्सन्देह बहुत से मामलों में नेतृत्व का अन्तर है।

विचार करने की बात यह है कि भारत-विजय विषयक, मिल द्वारा किया गया सार रूप में विश्लेषण, अँग्रेज-सैनिकों की स्वाभाविक श्रेष्ठता का जिक्र नहीं करता। भारत पर विजय हासिल करने की दो प्रमुख खोजें हैं—पहली, यूरोपियन सैनिकों की अनुशासित कार्यवाही की समता में भारतीय सैनिक की कमजोरी, दूसरी योरोपियन सेना में नौकरी करने वाले सैनिकों को प्रशिक्षण प्रदान करने की सुविधा। उसका कथन है कि ये दोनों खोजें फ्रान्सीसियों द्वारा की गयी थीं

## भारतीयों ने खुद ही भारत को जीता था

यदि हम यह स्वीकार कर लें कि अंग्रेज भारतीय सैनिकों की अपेक्षा युद्ध-कौशल में अधिक श्रेष्ठ थे और उन उपलब्धियों में जो दोनों के मिले-जुले प्रयास का परिणाम थी, उनका भाग उनके दायित्व से अधिक था, तो यह कहना कि अँग्रेज कौम ने भारतीय राष्ट्र पर विजय प्राप्त की थी, असत्य होगा। भारतीय राष्ट्रों पर विजय एक ऐसी सेना ने प्राप्त की थी जिसमें अनुमानतः पाँचवाँ हिस्सा ही अंग्रेज सैनिकों का था। लेकिन इस सफलता में हम अपने भाग को केवल बहुत बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कहते। बल्कि हम उसके विषय में पूरी तरह ग़लत धारणा बना लेते हैं और उनका गलत तरीके से बखान भी करते हैं। सवाल यह है कि सैनिकों का शेष 4/5 भाग किस जाति के लोगों का था, इसका उत्तर यही है कि वह भारतीय जाति के लोगों का भाग था। इसलिए भारत को विदेशियों द्वारा जीता हुआ मुश्किल से

कहा जा सकता है, इसलिए यह कहना अधिक उचित है उसने अर्थात भारतीय सैनिकों ने स्वयं ही अपने आपको, यानी भारत को, विजित किया था।

भारत को इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स के समान बताने में, यदि हमारी दृष्टि न्यायोचित है, मेरा विश्वास है कि वह नहीं है, तो हम उसको विदेशियों द्वारा पराजित किया हुआ नहीं दिखा सकते। इस स्थिति में, हमें कहना यह चाहिए कि अपनी सीमाओं में वर्तमान अराजकता का अन्त करने के लिए, उसने एक सत्ता के सामने आत्म-समर्पण करने का चुनाव किया, वह एक सत्ता भले ही विदेशियों के हाथ में रही हो।

लेकिन यह विवरण तथा भारत को राजनीतिक दृष्टि से सजग बताने वाला कोई भी कथन, अन्यों की तरह, असत्य तथा भ्रामक हो सकता है। सच्चाई यह है कि उन दिनों, राजनीतिक दृष्टि से, एक सजग भारत का अस्तित्व नहीं था, अन्य क्षेत्रों में भी समर्थ भारत की कल्पना मुश्किल ही थी। भारत शब्द का केवल भौगोलिक अर्थ था, यानी उसकी भौगोलिक सीमाएँ थीं। उनमें न राजनीतिक संगठन था, न सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता थी और न वह किसी एक ऊँचे लक्ष्य के साथ प्रतिबद्ध था। जिस प्रकार इटली तथा जर्मनी आसानी के साथ नैपोलियन के शिकार हो गये, क्योंकि उन दिनों इटली तथा जर्मनी का कोई ठोस अस्तित्व नहीं था और उनके निवासियों में इटली तथा जर्मनी के निवासी होने की कोई भावना न थी। क्योंकि जर्मनी में वर्तमान राज्यों में एक जर्मन राष्ट्र की भावना नहीं थी, इसलिए नैपोलियन ने, एक जर्मन राज्य को दूसरे के साथ लड़ाया। यही कारण है कि आस्ट्रिया अथवा पर्शिया के साथ युद्ध करते हुए उसके साथ, बवेरिया तथा वरटमवर्ग आदि मित्र-राष्ट्रों के रूप में, वर्तमान थे।

इस स्थिति में, नैपोलियन के विचार से, मध्य योरोप में उसकी विजय, उसके हाथ के सामने मौजूद थी। यही स्थिति, फ्रान्सीसी डूप्ले को, प्राचीन काल में भारत में दीख पड़ी थी; उसकी दृष्टि में, जो भी योरोपियन देश वहाँ कारखाने बना लेगा, उसके सामने भारत का साम्राज्य खुला पड़ा होगा। उसको भारत की रियासतों में, परस्पर परम्परागत युद्धों की स्थिति, अवगत हुई थी और उसने सोचा था कि उनके

9. (डूप्ले, जोसेफ फ्रेन्कोइस (1696-1763) भारत में फ्रांसीसी उपनिवेश का गवर्नर जनरल होने के कारण फ्रेंच उपनिवेश का प्रशासक था। वह रोवर्ट क्लाइव का सबल प्रतिद्वन्द्वी था और 15 दिसम्बर 1696 को फ्रांस के नगर लैण्ड्रेसीज में पैदा हुआ तथा पेरिस में 10 नवम्बर 1763 को दिवंगत हुआ था। वह भारत में राजनीतिक तथा उपनिवेश-मूलक प्रभाव स्थापित करने के लिए भारतीय रियासतों के परस्पर अन्तर-विरोध से लाभ उठाने वाला प्रथम विदेशी था।

झगड़ों में दखल देकर, विदेशी ताकतें, संतुलन बनाये रख सकती हैं। उसने, इस विचार पर कार्य करना भी प्रारम्भ किया था, फलतः भारत में योरोपियन साम्राज्य के इतिहास का प्रारम्भ, सन् 1748 में, हैदराबाद के नवाब निजामुलमुल्क की मृत्यु के बाद, उत्तराधिकार के सवाल पर छिड़ने वाली लड़ाई में, फ्रांसीसियों द्वारा किए गए हस्तक्षेप से, होता है।

मूल बात यह है कि उस समय, भारतवासियों के दिलों में विदेशियों के प्रति, ईर्ष्या का कोई भाव नहीं था ? क्योंकि राष्ट्रीय एकता के विषय में, भारत में कोई चेतना वर्तमान नहीं थी, इस स्थिति में, भारत के संबंध में कोई धारणा भारतीयों में नहीं थी, यही कारण है कि उस हालत में भारतीयों के लिए कोई विदेशीं भीनहीं था; जैसा कि मैंने संकेत किया है, इसका एक समानान्तर उदाहरण योरोप में भी मिल सकता है। लेकिन अस्सी वर्ष पूर्व के जर्मनी की अपेक्षा भारत में अधिक संख्या में राजनीतिक रिक्तता का अनुमान करना चाहिए। इस समय, हमारे विचाराधीन एक तथ्य है, इसको हमें समझना है, वह तथ्य है कि इंग्लैण्ड ने भारत पर जीत भारतीय सिपाहियों के माध्यम से ही हासिल की थी।

जर्मनी में भी, जर्मनी विषयक राष्ट्रीय चेतना न थी, लेकिन वहाँ एक सीमा तक, हालांकि कि वह भी अधिक मात्रा में नहीं, एक अनुभूति मौजूद थी और वह थी प्रूशिया की भावना, ओस्ट्रियाई होने की भावना, बवेरियाई होने की अनुभूति, सूआबियन होने की अनुभूति[10]। नैपोलियन को आस्ट्रिया के विरुद्ध बावेरिया को और प्रूशिया के खिलाफ दोनों को लड़ाने में सफलता अवश्य मिली। लेकिन वह बवेरिया, प्रूशिया तथा आस्ट्रिया को एक दूसरे के खिलाफ लड़ाने की कोशिश नहीं करता। अधिक स्पष्टता के साथ यह कहा जा सकता है कि वह सन्धियों के द्वारा यह सुनिश्चित करा लेता है कि बवेरिया का निर्वाचक उस सेना के लिए सैनिक टुकड़िया मुहिया कर दे, आस्ट्रिया के विरुद्ध जिसका नेतृत्व उसे करना है। लेकिन वह जर्मनी के विरुद्ध अभियान करने के लिए वेतन के आधार पर जर्मनी की सेना तैयार नहीं करता। भारत में जो कुछ देखा गया है, यह उसके ठीक समान है।

दोनों की समानता, इस तथ्य में निहित हो सकती है कि भारत को एक ऐसी सेना से जीता गया था जिसमें पाँचवे हिस्से के अंग्रेज सैनिक थे और बाकी के 4/5 भाग के भारतीय सिपाही थे; यदि इंग्लैण्ड ने फ्रांस पर आक्रमण किया होता और फ्रान्स को जीतने के लिए, तनख्वाह देकर, फ्राँसीसियों की ही एक विशाल सेना बनाई गई होती, तो भारत की घटना के समानान्तर उदाहरण मिल सकता था।

---

10. नैपोलियन के युग में प्रूशिया, बवेरिया, वरटेमवर्ग तथा सूआब शक्तिशाली सैनिक-राज्य थे और आजकल वे आस्ट्रिया, जर्मनी तथा स्वटजरलैण्ड के अंग हैं।

यह विचार भी बड़ा विकराल मालूम होता है। आपने क्या कहा, फ्रान्स के विपरीत लड़ाई लड़ने के लिए शान्तिपूर्वक फ्रांसीसियों की सेना का संगठन ? इसके साथ ही आप यह भी सोचने लगें कि यह बात सिद्धान्त रूप में संभव भी हो सकती है। हाँ, ऐसा हो भी सकता था, यदि फ्रान्स का इतिहास इससे कुछ भिन्न रहा होता। हम यह अनुमान कर सकते हैं कि फ्रान्स में भी राष्ट्रीय भावना का उफान कभी नहीं हुआ, इस बात का अनुमान आसानी के साथ इसलिए लगाया जा सकता है कि फ्रांस का, बारहवीं शताब्दी का इतिहास, लड़ाइयों से भरा हुआ है। ये लड़ाइयाँ कभी तो पेरिस पर राज्य करने वाले राजा के साथ हुई और कभी रोइन पर शासन करने वाले के साथ।

## उलझन भरे हुए विचार

हमको थोड़ा और अधिक विचार करना चाहिए कि फ्रान्स के विभिन्न भागों में स्थापित की गई सरकारें विदेशी ताकतों की थीं। और वास्तव में देश को विदेशियों द्वारा पहले ही जीत लिया गया था और वह देश अभी तक विदेशी राजाओं के जुए के नीचे रह रहा था। यह भली प्रकार समझा जा सकता है कि जब एक देश इस सीमा तक, विदेशी शासकों के अधिकार में बँट जाता है, तब वहाँ एक नितांत अव्यवस्थित हालत उत्पन्न हो जाती है, जिसमें वेतन-भोगी लड़ाइयाँ एक आकर्षक पेशा बन जाती हैं। ऐसा देश, पेशेवर सिपाहियों से भी भर जाता है। ये सिपाही, किसी भी सरकार के खिलाफ, लड़ाई में इस्तेमाल होने के लिए, तैयार रहते हैं, वह सरकार चाहे देशी हो अथवा विदेशी।

भारत की अवस्था भी इसी प्रकार की थी। अंग्रेजों ने यहाँ पर विदेशी शासन की शुरूआत नहीं की, क्योंकि यहाँ विदेशी-आधिपत्य पहले से ही मौजूद था। सच यह है कि हम इस विषय पर निश्चित भ्रान्त धारणा डाल देते हैं। योरोप का सम-जातीय समाज, एक निश्चित जाति के अधिकार वाला, एक निश्चित भू-भाग था, एक शब्द में कहा जाय तो—एक राष्ट्र—एक राज्य था। राज्य के विषय में हमारा अनुमान होता है कि इसका उदय स्वाभाविक है, यथार्थ में यह हमारे अनुमान का एक अपवाद होता है, फिर भी राष्ट्रीयता तथा सार्वजनिक गुणों के विषय में हमारी धारणा इस प्रकार के समजातीय समाज पर आधारित होती है।

भारत में राष्ट्रीयता की भावना पूरी तरह उलझी हुई अवगत प्रतीत होती है। यहाँ राष्ट्रीय तथा विदेशी का अन्तर सताप्त हुआ प्रतीत होता है। केवल ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर आज तक मुसलमान आक्रमणकारियों के उफान ने ही इस देश को आक्रान्त नहीं किया, बल्कि यदि हम कुछ और पहले से देखें, तो इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि यहाँ मिश्रित जातियों का अस्तित्व था और एक जाति पर, दूसरी जाति

का अधिकार भी था। यहाँ तक कि संस्कृत भाषा-भाषी आर्य जाति, जो ब्राह्मणवाद को जन्म देने वाली है और जिसने यथासम्भव भारत को एकता भी प्रदान की थी, स्वयं आक्रान्ता प्रतीत होती है और एक आक्रमणकारी के रूप में, वह दूसरी जातियों को निगलने अथवा अपने में मिलाने में सफल भी नहीं हुई।

योरोप की पुरानी जाति, भारत-जर्मनिक नहीं, वहाँ पूरी तरह समाप्त हो गई है और उसका योरोपियन भाषाओं पर कोई प्रभाव भी शेष नहीं रहा है, लेकिन भारत में जातियों अथवा मानव-वंशों के पुराने स्तर हर तरफ देखने को मिलते है। यहाँ बोलचाल की भाषाएँ, केवल संस्कृत का तद्भव रूप ही नहीं हैं, वरन् अधिक पुरानी तथा पूरी तरह भिन्न भाषाओं के साथ उसके मिश्रण से उत्पन्न हुई बोलियाँ हैं। ब्राह्मणवाद जो प्रारम्भ में सार्वभौमिक तथा सार्वजनिक प्रतीत हुआ था, परीक्षा करने के बाद, केवल हलकी धुँधली-सी लहर प्रतीत हुआ, जिसने एक-दूसरे से भिन्न तथा असम्बद्ध अंधविश्वासों को एकता तथा सामंजस्य मूलक नाटक का रूप मात्र दिया।

इसका तात्पर्य यह है कि भारत में उन आधारभूत सिद्धान्तों की उपलब्धि नहीं होती, जिन पर पश्चिम की समस्त राजनीतिक आचार-संहिता निर्भर करती है। वहाँ समजातीय समुदाय का अस्तित्व वर्तमान था, जिससे तथाकथित राष्ट्र की उद्भावना होती है। इस विषय में, अपने सन्तोष के लिए, अधिक पीछे की ओर जाने की आवश्यकता नहीं है।

इस बात पर विचार करना ही काफी होगा कि भारत में महमूद गजनी[11] के समय से ही सबल मुसलमान आक्रमणकारियों की बाढ़ पर बाढ़ आती चली गई। 16 वीं शताब्दी में मुगलों के आने से पहले ही भारत में, अधिकांश राज्यों में मुस्लिम सरकारें थीं। इसी समय से, इसी कारणवश, यहाँ राष्ट्रीयता का सूत्र टूट गया था। उस समय, सरकार अधिकार पर आधारित नहीं थी, यही कारण है कि सरकार को राष्ट्रीयता की अपील करने का अधिकार भी नहीं रह गया था।

ऐसी हालत में, जिसको हम इंग्लैण्ड द्वारा भारत की विजय कहते हैं, उसकी व्याख्या, भारतीय को, अन्यों की उपेक्षा हीन, कहे बिना की जा सकती है। ठीक इसी तरह, यह तर्क हमें अंग्रेजों को अन्यों की अपेक्षा, अधिक श्रेष्ठ समझने का मौका

---

11. लेखक उस तरीके का वर्णन करता है, जिसके द्वारा अंग्रेजों ने, भारतीय शासकों की आपसी ईर्ष्या तथा मतभेद का लाभ उठाकर भारत पर अधिकार प्राप्त किया था। यद्यपि यही तरीका मुगलों द्वारा और उससे पहले मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा प्रयोग में लाया गया था। और यह प्रक्रिया इतिहास में बहुत पुराने समय तक चली जाती है, यानी सिकन्दर के समय तक, जब कि वह अन्य भारतीय राजाओं के सहयोग से, राजा पोरस पर विजय पाने में समर्थ हुआ था।

नहीं देता ।

हम, अपने देश के लिए विदेशियों से लड़ना अपना कर्तव्य समझते हैं। लेकिन एक व्यक्ति का राष्ट्र या देश क्या होता है? जब हम इस धारणा का विश्लेषण करते हैं, तो हम पहले से ही यह मान लेते हैं कि एक आदमी का पालन-पोषण एक समुदाय में हुआ है, जिसको एक विशाल परिवार माना जा सकता है, इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह आदमी उस देश को अपनी मातृभूमि मान ले। लेकिन व्यक्तियों का वह समुदाय, यदि एक विशाल परिवार के स्वभाव का नहीं है, और उसकी रचना आपस में घृणा करने वाली एक अथवा दो जातियों से हुई है, यदि देश को एक राष्ट्र के रूप में स्वीकार न करके गाँव को ही घर मान लिया जाता है, तो उनके निवासियों का यह दोष नहीं कि वे राष्ट्रवाद का विचार न करके ग्रामवाद का भाव रखते हैं। यह स्थिति, पहली अवस्था है जिसमें वे विदेशी शासन का बोझ सहन करते हैं और एक विदेशी शासन से दूसरे विदेशी शासन को बदल लेना दूसरी अवस्था है।

## यह एक विजय नहीं

लेकिन जैसा कि मैंने कहा है कि भारत पर इंग्लैण्ड की विजय का आश्चर्यजनक पहलू यह नहीं है कि यह जीत हुई, वरन् अनोखी बात यह है कि इसको हासिल करने में इंग्लैण्ड को विशेष परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा और न विशेष प्रयास ही करने पड़े। इस विजय के लिए अँग्रेज जाति को कोई कर नहीं देने पड़े; इंग्लैण्ड की सरकार को कहीं से कर्ज नहीं लेना पड़ा, न अनिवार्य भर्ती का नियम लागू करना पड़ा, न कभी इंग्लैण्ड वासियों का संहार देखने का अवसर मिला, और न अन्य दूसरे युद्धों के संचालन में कोई विशेष बाधा इसलिए उत्पन्न हुई कि हम भारत में यूरोप की आबादी के समान वाले देश को जीतने में संलग्न थे।

प्रारम्भ में, यह अविश्वसनीय-सा प्रतीत हुआ था, किन्तु मैं पहले ही इसकी व्याख्या कर चुका हूँ। जहाँ तक इन लड़ाइयों के खर्च का सवाल है, वह उसी सामान्य सिद्धान्त के अन्तर्गत आ जाता है, जो विजय के लिए लड़ी गई दूसरी लड़ाइयों पर लागू होता है। वह सामान्य सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक विजय अपना खर्च स्वयं पूरा कर देती है। नैपोलियन को युद्धों के संचालन में धन-संबंधी किसी परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा, क्योंकि वह हमेशा उन लोगों के कन्धों पर लड़ाइयाँ लड़ता रहा, जिनको उसने युद्ध में मिटा दिया था, यही बात भारत में हमारी लड़ाई के खर्च के बारे में लागू होती है। इस संदर्भ में, केवल एक परेशानी को समझना ही बाकी है और वह है कि सेना का निर्माण किस प्रकार किया गया था? और यह परेशानी भी उस समय दूर हो जाती है, जब हम यह जानने लगते हैं

कि सेना का हमेशा 4/5 भाग स्थानीय सिपाहियों का ही रहा था।

अगर हम सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित करें, और यदि मैं गलती नहीं करता हूँ तो हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भारत पर सार्वभौम सत्ता के संदर्भ में, विजय नामक शब्द का प्रयोग नितांत कमजोर ही नहीं, वरन् भ्रम में डालने वाला भी है और इस घटना को, हमें ऐसी उन तमाम घटनाओं के मध्य रखने के लिए लालायित करता है, जो आपस में बिलकुल मिलती-जुलती नहीं हैं। यथार्थ में, मैंने पहले भी कई बार यह बात उठाई थी कि इस शब्द का प्रयोग करने से, इसके अर्थ पर जितनी गहराई के साथ विचार होना चाहिए था; उतनी गम्भीरता के साथ नहीं हुआ। इसके कई भिन्न अर्थ हो सकते हैं। निश्चित रूप से, विजय शब्द का प्रयोग, उसी स्थिति में होता है, जब एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाती है।

दो-राष्ट्रों में युद्ध होता है, एक राष्ट्र की फौज दूसरे देश की फौज पर हमला करती है और उसकी सरकार को अपदस्थ कर देती हैं अथवा उस देश की सरकार को ऐसी अपमानजनक स्थिति में डाल देती है कि वह सही अर्थों में अपने अधिकारों से वंचित हो जाती है। सही अर्थ में, विजय अथवा जीत इसी को कहा जाता है। जब हम कहते हैं कि इंग्लैण्ड ने भारत पर जीत हासिल की तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि इंग्लैण्ड तथा भारत के बीच में इसी प्रकार का कुछ हुआ होगा?

जब महान् सिकन्दर ने परशियन-साम्राज्य पर विजय प्राप्त की थी, तब मैकोडोनियन राष्ट्रों तथा परशियन देशों में युद्ध हुआ था, जिसमें बाद वाले राष्ट्रों पर अधिकार किया गया था; जिस समय सीजर ने गौल पर विजय प्राप्त की थी, तब उसने रोमन रिपब्लिक के नाम पर कार्यवाही की थी; वह रोमन रिपब्लिक द्वारा दिए गए एक अधिकार से युक्त था और रोमन राज्य की सेना का सेनापतित्व कर रहा था। लेकिन भारत में, इस प्रकार की कोई घटना घटित नहीं हुई।

इंग्लैण्ड के बादशाह ने महान् मुगलों अथवा भारत के किसी नवाब तथा राजा के खिलाफ किसी युद्ध की घोषणा नहीं की थी। भारत की विजय में, शुरू से लेकर अंत तक, अंग्रेजी-राष्ट्र को कोई दिलचस्पी नहीं थी लेकिन कुछ ऐसा हुआ कि भारत में फ्रेंच बस्तियों के स्थापित हो जाने के बाद, इंग्लैण्ड को पाँच बार फ्रान्स के साथ लड़ाई में उलझना पड़ा, यह एक विचारणीय स्थिति थी और बात यहाँ तक थी कि ये लड़ाइयां आंशिक रूप से भारत में ही लड़ी गई थीं। इन लड़ाइयों में एक सीमा तक; ईस्ट इंडिया कंपनी तथा स्थानीय शक्तियाँ भी उलझी हुई थीं।

यदि हम, इस घटना के स्वरूप को, भली प्रकार समझ लेना चाहते हैं तो हमें इस परिस्थिति को, जो आकस्मिक रूप से पैदा हो गई थी, एक तरफ हटा कर रख देना चाहिए। तब हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि जिसको विजय कहा जाता है, ऐसी कोई बात कभी घटित नहीं हुई। असल में हुआ यह कि कुछ व्यापारी जो भारत में,

समुद्री किनारों के कुछ बन्दरगाहों पर अधिकार किए हुए थे, अनुप्रेरित हुए, अथवा यह कहा जाय कि मुगल-सरकार के पतन के बाद, अपनी रक्षा करने की भावना के कारण, प्रायः विवश हो गए कि वे स्वयं को फौजी रूप दे डालें और सेना की भर्ती कर लें। इन सैनिक टुकड़ियों के बल पर, इन व्यापारियों ने, कुछ भागों को जीत लिया था और अंततः भारत के समस्त भाग पर अधिकार कर लिया था। ये व्यापारी अंग्रेज थे और इन्होंने एक सीमा तक, हालाँकि बहुत बड़ी सीमा तक नहीं, अपनी सेना में अँग्रेज सिपाहियों की भर्ती करली थी।

अब इसको विदेशियों की विजय नहीं कही जा सकती, बल्कि इसको आन्तरिक क्रान्ति कहा जाना चाहिए। जब किसी देश में, सरकार का पतन हो जाता है, और अराजकता फैल जाती है, तब आमतौर पर होता यह है कि उस देश में बाकी बची संगठित शक्तियों में लड़ाई प्रारम्भ हो जाती है और इनमें सर्वाधिक शक्तिशाली संगठित ताकत सरकार बना लेती है। उदाहरण के लिए सन् 1792 में, फ्रान्स में बोरवान परिवार के पतन के बाद, विशेषतः पेरिस के नगरनिगम के प्रभाव से, एक नई सरकार की स्थापना की गई थी। लेकिन जब कुछ साल बाद, इस सरकार की लोक-प्रियता खत्म हो गई, तो बोनापार्ट द्वारा नियंत्रित एक सैनिक सरकार द्वारा अपदस्थ कर दी गई।

## अनुकूल परिस्थितियां

सन् 1707 में मुगल-सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के बाद, मुगल-सरकार के पतन के परिणामस्वरूप, सन् 1750 के लगभग भारत में अराजकता की स्थिति पैदा हो गई थी। इतने बड़े देश में; इतने विशाल क्षेत्र में, हर-स्थान पर अपना असर खो देते के बाद, मुगल-शासन की सत्ता खत्म हो गई थी, इसलिए सामान्य नियम लागू होना शुरू हो गया था, और वह यह कि हर तरफ छोटी-छोटी संगठित शक्तियाँ स्वयं को सर्वोच्च सिद्ध करने का प्रयास करने लगीं थीं। भारत की रीतिरिवाज के अनुसार, ये शक्तियाँ या तो आमतौर पर भाड़े के सिपाहियों की टुकड़ियों के रूप में थीं, जिनका नेतृत्व पतनशील मुगल-सरकार का कोई प्रमुख गवर्नर कर रहा था अथवा कोई ऐसा साहसिक व्यक्ति कर रहा था जिसको उनका नेतृत्व करने का अवसर हाथ लग गया था अथवा इनका नेतृत्व किसी ऐसी स्थानीय सत्ता के हाथ में था, जिसका अस्तित्व भारत में मुगलों की सर्वोच्च सत्ता की स्थापना से पहले मौजूद था और जिसने मुगल-सत्ता के सामने पूरी तरह आत्मसमर्पण भी नहीं किया था।

हर प्रकार की शक्ति का उदाहरण देने के लिए यह कहा जा सकता है कि महान् मुगलों के क्षत्रप, जिसको निजाम कहा जाता था, ने हैदराबाद राज्य की स्थापना की थी। मैसूर राज्य की स्थापना हैदरअली नामक एक साहसिक मुस्लमान

ने कर ली थी, जो सिर्फ अपनी सैनिक कुशलता के बल पर नीचे से इतना ऊँचा उठ गया था। महाराष्ट्र का महान् राज्यसंघ जिसका नेतृत्व ब्राह्मण पेशवा द्वारा किया जा रहा था, मुगलों के आने से पहले के पुराने भारत का प्रतिनिधित्व करता था। तमाम ये शक्तियाँ, जिनकी सहायता भाड़े के सिपाही कर रहे थे, पुराने झगड़ों में उलझी हुई थीं और आपस में लूट-पाट करने में संलग्न थीं। मेरा खयाल है कि ऐसी हालत कैरोलिनजियन साम्राज्य के पराभव काल के अलावा योरोप में शायद ही कभी देखने को मिली हो।

ऐसी हालत, देश में नई ताकत के उदय के लिए, विशेष रूप से अनुकूल थी। अन्य परिस्थितियों में, विजय के लिए, शक्ति की विशेष पूंजी का होना आवश्यक माना जाता है। कोई दृढ़तापूर्वक यह नहीं कह सकता कि यह सर्वमान्य अधिकार अथवा पूंजी सेना नहीं रखतीं, किंतु उन परिस्थितियों में यह बात बिलकुल उल्टी सिद्ध हुई। हैदरअली के पास अपने सिर तथा दाहिनी भुजा के अलावा कुछ नहीं था और वह मैसूर का सुल्तान बन गया। उन दिनों, भाड़े के सिपाही सब जगह मिलते थे। वे, उसकी सेवा किया करते थे, जो उनको वेतन देता था अथवा उन पर अपना प्रभाव स्थापित कर लेता था। उन दिनों, जिसके पास ये भाड़े के सिपाही होते थे, वह भारत की महान् ताकतों के स्तर पर खड़ा होता था। इसका सिर्फ कारण यह है कि केन्द्रीय सत्ता के पराभव काल में, शक्ति केवल सेना की मानी जाती है।

इन अनोखी परिस्थितियों में, भारत में वर्तमान अनेक प्रकार की स्थानीय सैनिक ताकतों में; एक ताकत समुद्र के किनारे बन्दरगाहों में फैकटरियाँ चलानेवाले व्यापारियों की भी थी, जो साम्राज्य-स्थापना की सफलता के लिए लड़ाई लड़ सकती थी। निश्चय ही, ये व्यापारी विदेशी थे, लेकिन, जैसा कि मैंने अभी कहा है, भारत में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्यों कि भारत में अधिकांश सरकारें विदेशी रहीं थीं, यहाँ स्वयं महान्-मुगल भी विदेशी थे। ईस्ट इंडिया कंपनी की तकदीर की आश्चर्यजनक स्थिति के बारे में बात करते हुए पर्याप्त शब्दाडम्बर का इस्तेमाल किया जा चुका है।

यह सत्य है कि इससे पहले इतने बड़े सौभाग्य का कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता, यही कारण है कि किसी के दिमाग में, इतने बड़े सौभाग्य के विषय में, भविष्यवाणी करने की बात नहीं आई। भारत पर अंग्रेजों की विजय की घटना इस अर्थ में आश्चर्यजनक नहीं थी कि उसके विषय में कुछ कहना कठिन था अथवा उसका कोई दूर से दीखने वाला कारण न था। ईस्ट इंडिया कंपनी के पास, वास्तव में, अपना कार्य शुरू करने के लिए कुछ धनराशि थी। उसके पास धन के प्रयोग का अधिकार था, इसके पास दो-तीन किले थे, समुद्र पर अधिकार था और इसके अलावा उसको एक संगठन अथवा समिति होने का लाभ भी प्राप्त था। यही कारण है कि वह न तो लड़ाई में मारी जा सकती थी और न बुखार से मर सकती थी।

जब एक आदमी अपने व्यक्तिगत स्थान से एक बहुत बड़े भूभाग की सीमा के साम्राज्य तक पहुँच जाता है, तब हमें विशेष आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि ऐसा आमतौर पर होता आया है और फिर भी स्वभावतः यह बहुत अधिक आश्चर्यजनक है कि कोर्सिका के एक गरीब नोबुलमैन का छोटा बेटा, योरोप के साम्राज्य के अधिकांश भाग का शासन, एक निरंकुश शासक के रूप में करे। ईस्ट इंडिया कंपनी भारत पर विजय प्राप्त करे, इससे अधिक आश्चर्यजनक घटना, स्वभावतः यह है, क्योंकि बोनापार्ट ने अपना कार्य बिना किसी दिलचस्पी, बिना दोस्त, जेब में बिना पैसे के शुरू किया था और उसने केवल एक साम्राज्य को प्राप्त ही नहीं किया, बल्कि बीस वर्षों से कम में ही उसको खो भी दिया था। इसी प्रकार हैदरअली का उदय हुआ, सिंधिया तथा होल्कर का उत्थान हुआ। इनका उत्थान अधिक आश्चर्यजनक था और ईस्ट इंडिया कंपनी की समता में अधिक पक्षपात की अपेक्षा रखता है।

## कम्पनी का कवच

आप देखते हैं कि मैं चाहता हूँ कि आप इस घटना को, उन तमाम घटनाओं के समूह से अलग करके देखें, जिनमें, इसको शामिल करके प्रायः देखा जाता रहा है। यह एक राज्य की दूसरे राज्य पर विजय नहीं है। यह एक ऐसी घटना भी नहीं है, जिससे दो राज्यों का सीधा संबंध रहा हो। यह विदेश विभाग से संबंधित घटना भी नहीं है। यह भारतीय समाज की आन्तरिक क्रान्ति है। इस घटना की समानता आकस्मिक घटनाओं तथा अधिकार-प्राप्ति के लिए किये गए उन अनेक प्रयत्नों में से किसी एक के साथ की जा सकती है, जिसके घटित होने से समाज में फैली अव्यवस्था का समय समाप्त हो जाता है।

एक क्षण के लिए, हम यह कल्पना कर लें कि जिन व्यापारियों ने भारत की सत्ता पर अधिकार कर लिया था, वे बिल्कुल विदेशी नहीं हैं, तो इस घटना के स्वरूप पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। हम, यह भी कल्पना कर सकते हैं कि बंबई के कुछ पारसी व्यापारी, जो देश में फैली अराजकता से बुरी तरह परेशान इसलिए थे कि वह उनके व्यापार को खराब कर रही थी, एक संगठन की स्थापना करते हैं, किले बनाने के लिए पैसा एकत्र करते हैं और सेना बना लेते हैं और तब योग्यतम सेनापतियों को नौकरी पर रख सकते हैं। इस हालत में, उनको भी प्लासी तथा बक्सर जैसी लड़ाइयाँ लड़नी पड़तीं, उनको भी महान् मुगलों से किसी प्रदेश की दीवानी अथवा आर्थिक-शासन बलपूर्वक छीनना पड़ता और वे इस तरह एक साम्राज्य की नींव डाल देते, जो थोड़े समय में सारे भारत में फैल सकता था।

इस स्थिति में, हमारे साथ भी यथार्थ में, ऐसा ही हुआ और वह स्पष्ट रूप से

अपने असली रूप में सब के सामने आ गया। हमें इस घटना को, एक आन्तरिक क्रान्ति के रूप में ही देखना चाहिए, क्योंकि यह घटना एक समाज को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट देनेवाली अराजकता के विपरीत आन्तरिक संघर्ष का परिणाम थी।

ऐसी घटना की स्थिति में, आश्चर्यजनक, कुछ भी न था, और इसीलिए ईस्ट-इंडिया कंपनी का उदय बहुत कम आश्चर्यजनक घटना थी। इसका कारण यह है कि यह कंपनी योरोप से सम्बन्धित थी और सैनिक विज्ञान तथा अनुशासन में उसकी परम्परा का अनुसरण कर सकती थी और यह भी सच है कि योरोप की यह परम्परा भारत की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ थी और यह भी, एक सच्चाई है कि फ्रान्सीसी डूपले, जिसने, भारत-विजय के सिद्धान्त की स्थापना बड़ी स्पष्टता के साथ कर दी थी, यह समझ गया था कि भारत की स्थानीय सेनाएँ एक क्षण के लिए भी योरोपीय सेनाओं का मुकाबला नहीं कर सकतीं, लेकिन उसने यह भी जान लिया था कि भारतीय सिपाही योरोपीय अनुशासन तथा सैनिक शिक्षा प्राप्त करने में पूरी तरह कुशल हैं और उसके योरोपीय सिपाहियों की कुशलता के समान युद्ध करने में समर्थ हैं।

यह निष्कर्ष ही कम्पनी के लिए एक कवच के समान था। ईस्ट इंडिया कंपनी इस कवच के बल पर ही, भारत में वर्तमान अनेक शक्तियों के बीच, सिर्फ खड़े होने की ताकत पाने में ही समर्थ नहीं हुई, वरन् उनको पछाड़ने में भी समर्थ हुई। कंपनी के पास केवल अवरणीय शारीरिक तथा नैतिक श्रेष्ठता ही नहीं थी, जिसके बारे में सोचना हमको बहुत अच्छा लगता है, वरन् भारतीयों की अपेक्षा बहुत अधिक श्रेष्ठ अनुशासन तथा सैनिक-प्रणाली भी थी, जिसको भारत के स्थानीय लोगों को सिखाया जा सकता था।

इससे भी आगे, वह एक फायदे की स्थिति में और थी। निश्चित रूप से, वे (कम्पनी के अधिकारी) इंग्लैण्ड की सरकार का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे, लेकिन फिर भी, इंग्लैण्ड के साथ उनका सम्बन्ध उनको असीम फायदा पहुँचाने की स्थिति में था। उनको भारत पर विजय प्राप्त करने के लिए, मुख्य रूप से, पैसा तथा आदमी एकत्र करने थे। लेकिन अधिकार-पत्र के अधीन, एक व्यावसायिक समवाय के रूप में, वह भारत तथा चीन में इंगलैंड के सामान का व्यापार करने का एकाधिकार रखती थी। इसलिए कंपनी के तमाम व्यापारी इंग्लैण्ड की सरकार तथा पार्लियामेंट के लिए रुचि के विषय थे। ऐसा अनेक बार हुआ कि जिन लड़ाइयों के बल पर उन्होंने भारत पर जीत हासिल की थी, वे लड़ाइयाँ इंग्लैण्ड की जनता को इंग्लैण्ड तथा फ्रान्स के मध्य होने वाले युद्ध प्रतीत हुए, इसलिए हमारे राष्ट्र द्वारा उनका हार्दिक समर्थन किया गया।

यह आधारभूत महत्व का सत्य है, जिस पर प्रायः भली प्रकार से विचार नहीं किया गया। भारत पर इंग्लैण्ड की विजय, कम्पनी तथा भारत की किसी स्थानीय

सत्ता के साथ संघर्ष से, प्रारम्भ नहीं हुई। इसका समारम्भ, फ्रान्स द्वारा दक्षिणी राज्यों पर अधिकार पाने की योजना के अतिरिक्त, बम्बई तथा मद्रास में अंग्रेजों की बस्ती तथा अधिकार-क्षेत्र को समाप्त करने के उद्देश्य से, हैदराबाद राज्य में, उत्तराधिकार के सवाल पर, टाँग अड़ाने के साथ हुआ था। पूरब में हमारी पहली सैनिक कार्यवाही फ्रान्स के हमले से अपनी रक्षा करने के उद्देश्य से की गई थी। उस समय से लेकर, लगभग सत्तर वर्ष तक, यानी नैपोलियन से लड़ाई के अन्त तक, भारत में हमारी लड़ाइयाँ फ्रान्स के विपरीत सुरक्षात्मक संघर्ष के रूप में ही सदैव प्रतीत हुईं।

इसका प्रभाव यह हुआ था कि यद्यपि इन लड़ाइयों को न तो राष्ट्र के नाम पर लड़ा गया था और न राज्य के खर्चे पर, फिर भी एक निश्चित सीमा तक, ये राष्ट्रीय लड़ाइयाँ प्रतीत हुईं, जिनसे इंग्लैण्ड बड़ी गहराई के साथ जुड़ा हुआ था। इसलिए, एक बड़ी सीमा तक, कंपनी की सेनाओं की सहायता रोयल सेनाओं ने की थी और सन् 1785 से, जब कि लार्ड कार्नवालिस वहाँ गवर्नर-जनरल के रूप में पहुँच गया, तब से तो एक प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ कंपनी की राजनीतिक तथा सैनिक गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए निश्चित हो गया था।

## मुगल शक्ति का ह्रास

इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट में, ईस्ट इंडिया कम्पनी पर जो हमले किये गये थे, लार्ड क्लाइव के विपरीत निंदा का जो प्रस्ताव लाया गया था, वारेन हेस्टिंग्ज के विरुद्ध जो महाअभियोग चलाया गया था, कंपनी की गतिविधि को नियंत्रित करने के लिए लगातार जो प्रशासकीय योजनाएँ तैयार की गई थीं, जिनमें से एक 1783 की घटना है, इन सबने इंग्लैण्ड के समस्त राजनीतिक जगत् में हलचल पैदा कर दी थी। इन तमाम दखलनदाजियों ने, भारत में हमारे युद्धों को, राष्ट्रीय-संग्राम सिद्ध करने में योग दिया और कंपनी को इंग्लैण्ड राष्ट्र के रूप में पहचनवा दिया गया। इस प्रकार कंपनी, प्रथम कोटि के एक योरोपियन राष्ट्र की ख्याति तथा यश से मंडित हो गई, हालाँकि वास्तविकता यह है कि राष्ट्र के रूप में इंग्लैण्ड ने, कंपनी को, विशाल भूभाग के अधिग्रहण की दिशा में कोई योग नहीं दिया।

महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं के लिए आश्चर्यजनक तथा 'अद्भुत' आदि शब्दों का प्रयोग प्रायः किया जाता है और भारत पर हमारी विजय के अलावा कोई और ऐसी घटना नहीं है, जिसके लिए इन शब्दों का प्रयोग इतनी अधिकता के साथ किया गया हो। लेकिन एक घटना, स्पष्टीकरण की दृष्टि से बहुत अधिक जटिल न होते हुए भी आश्चर्यजनक तथा अद्भुत हो सकती है। भारत पर अंग्रेजों की जीत इसलिए आश्चर्यजनक तथा अद्भुत है कि इससे पहले, इससे मिलती-

जुलती कोई घटना नहीं हुई, इसलिए, वे लोग, जिन्होंने पहली शताब्दी तथा आधी सदी तक, भारत में इस कंपनी की कार्यवाही का नियंत्रण किया था, इससे मिलती-जुलती घटना की आशा नहीं कर सके थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जॉब चारनौक, या जोसिया चाइल्ड, या मद्रास का गवर्नर पिट (लार्ड चाथम के पितामह) अथवा शायद मेजर लारेंस ने कभी कल्पना तक नहीं की थी कि वह किसी दिन पेशवा या महाराष्ट्र अथवा स्वयं महान् मुगलों की सत्ता को समाप्त कर देंगे। यह घटना, इसलिए भी आश्चर्यजनक नहीं है कि इसके घटित होने के समस्त तथा सम्यक् कारणों की खोज कठिन है।

यदि हम, यह कहते हुए शुरू करें कि भारत में सत्ता का पतन, मुगल-साम्राज्य के ह्रास से प्रारम्भ हुआ था, और वह सत्ता इस बात का इन्तजार कर रही थी कि कोई शक्तिशाली आए और उसको अपने हाथ में ले ले, और उस समय सम्पूर्ण भारत में किसी न किसी प्रकार का साहसिक अपने साम्राज्य की स्थापना का प्रयास कर रहा था; ऐसी स्थिति में, वास्तव में यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि व्यापारियों का एक संगठन, जिसके पास भाड़े के सिपाही रखने के लिए धन था, वह अन्य साहसिक लोगों का मुकाबला करे और उसमें सफलता प्राप्त कर ले, इस घटना का अनोखापन इस बात में भी नहीं है कि यह मैदान की भूमि में, अंग्रेजी सैनिक विज्ञान तथा सेनानायकत्व को उतारे, और दूसरे प्रतिद्वन्द्वियों को पीछे छोड़ दें। विशेषतः तब, जबकि उसकी सहायता इंग्लैण्ड की समस्त सत्ता तथा ख्याति द्वारा की गई हो और इग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों द्वारा उसका संचालन भी किया गया हो।

मैंने जो कुछ कहा है, उसका निष्कर्ष यह है कि भारत पर इंग्लैण्ड की विजय साधारण अर्थों में विजय नहीं है, क्योंकि यह राज्य द्वारा किया गया काम नहीं था और उसको किसी सेना ने भी पूरा न किया था और न उसे एक राष्ट्र की पद्धति से पूरा किया गया था। मैंने, इस ओर संकेत, इसलिए किया है, ताकि 'इंग्लैण्ड ने भारत पर विजय प्राप्त की थीं', कथन से उत्पन्न सन्देह दूर हो जाय। भारत जिसकी आबादी समस्त योरोप के समान विशाल है और योरोप से कई हजार मील की दूरी पर बसा है, और यह विजय भी उस हालत में सम्भव हो सकी जब इंग्लैण्ड एक सैनिक राष्ट्र नहीं है यद्यपि यह बहुत बड़ी विजय, इंग्लैण्ड ने, बिना किसी थकानेवाले प्रयासों के तथा बिना किसी खर्चे के प्राप्त कर ली थी। इस विरोधाभास की व्याख्या यही है कि निश्चित अर्थ में इग्लैण्ड ने भारत पर विजय प्राप्त नहीं की थी, लेकिन यथार्थ बात यह है कि जिस समय भारत में मुगल-सरकार का पतन हो रहा था, उस समय भारत में कुछ अंग्रेज रहते थे। उनके पास, हैदरअली तथा रणजीतसिंह के समान सम्पत्ति भी थी और वे ही यहाँ सर्वोच्च सत्ता तक पहुँच गये

लेकिन व्यवहार के स्तर पर, निश्चित रूप से, यह घटना भारत पर इंग्लैण्ड

की जीत प्रमाणित हुई। इस समय, जीत की वह प्रक्रिया पूरी हो चुकी है, साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी को समाप्त कर दिया गया है और हम देखते हैं कि रानी विक्टोरिया इस समय भारत की साम्राज्ञी हैं। साथ ही, एक सैक्रेटरी, जो इंग्लैण्ड के मंत्रि-मण्डल का सदस्य है और पार्लियामेण्ट में बैठता है, भारत के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। इंग्लैण्ड राष्ट्र ने भारत का अधिग्रहण नहीं किया था, बल्कि वह इंग्लैण्ड के हाथों पर आ गिरा था।

यह, उस आम नियम का एक उदाहरण मात्र है, जिसके बारे में, मेरे द्वारा ऊपर जिक्र किया गया है और जो कोलम्बस[13] के समय से लेकर आज, योरोप से बाहर योरोपियन बस्तियों के प्रशासन का आधार रहा है। ये योरोपियन भले ही चाहे जितनी दूर तक घूमते रहे हों, उनकी सफलताएँ चाहे जितनी अद्‌भुत तथा आश्चर्यजनक रही हों, प्रारम्भ के समय में, ये लोग, अपनी योरोप की नागरिकता को त्यागने में कभी समर्थ नहीं हुए। कोर्टेज[14] तथा पिजारो[15] को अमेरिका में जिन सरकारों से सामना करना पड़ा था, वे उनके पैरों तले काँपती रही थीं। वे जहाँ कहीं गये, वहाँ स्वयं को सर्वोच्च सिद्ध करने का प्रयास उन्होंने मुश्किल से किया। लेकिन फिर भी उनको मैक्सिको में, मॉनटेजमा[16] के अधिकार को खत्म करने का मौका, हाथ लग गया था, पर वे चार्ल्स पंचम,[17] जो एटलांटिक की दूसरी ओर अधिकार में था, के शासन का प्रतिरोध न कर सके और न प्रतिरोध करने का स्वप्न तक देख सके।

इसका परिणाम यह हुआ कि इन लोगों ने बिना किसी सहायता के, अपने

13. सन् 1492 में कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज के बाद, नये योरोपियन बाशिंदों का आगमन शुरू हुआ, जिसका परिणाम हुआ योरोपवासियों द्वारा दुनिया के अधिकांश भूभाग को जीत लेना।
14. हरनन कोर्टेज (1485-1547) स्पेन का रहनेवाला था। उसने मैक्सिको पर जीत हासिल कर ली थी। वह मेडोलिन, एस्ट्रीमाडयूरा में 1485 में पैदा हुआ था।
15. फ्रान्सिस पिजारो (1474-1541) ने पैरो को खोजा था और उस पर जीत हासिल की थी। वह ट्रूजीलो स्पेन में पैदा हुआ था।
16. मैक्सिको का महान् सम्राट जिसकी शानदार अजतक सभ्यता को कोर्टेज ने 1521 में पराजित एवं विनष्ट कर दिया था।
17. इंग्लैण्ड का सम्राट चार्ल्स पंचम स्पेन तथा पुर्तगाल से युद्ध में लगा था। ये दो देश ही ऐसे ये, जिन्होंने सबसे पहले, योरोप के बाहर देशों को जीता था, किंतु अन्त में दो सौ वर्ष की प्रतिद्वन्द्विता के बाद इंग्लैण्ड ने उनको पराजित कर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

साहस तथा प्रयासों के बल पर, जो प्रदेश जीते, उनको तुरंत स्पेन ने जब्त कर लिया यही बात अंग्रेजों के साथ भारत में हुई। सन् 1765 के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी मुगल-दरबार में नाम मात्र को ऊँचा अधिकार रखती थी। लेकिन इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट ने फौरन इस बात पर जोर देकरकहा कि कंपनी द्वारा जिन भू-भागों पर अधिकार किया जायेगा, वे पार्लियामेण्ट के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत रहेंगे। बात-चीत तथा बहस के दौरान, महान्-मुगलों का नाम मुश्किल से ही कहीं लिया गया और यह सवाल कभी उठता प्रतीत नहीं हुआ कि वह (मुगल-सम्राट) बंगाल, बिहार और उड़ीसा आदि अपने सूबों का प्रशासन विदेशी हाथों में जाने की मंजूरी दे देगा?

ईस्ट इण्डिया कम्पनी तुरन्त दो स्थितियों में आ गई थी। इग्लैण्ड के सम्राट द्वारा घोषित कानून के अन्तर्गत वह एक कम्पनी थी; महान्-मुगलों के अधिकार में यह एक दीवान थी। लेकिन इसने महान् मुगल-साम्राज्य को उसी प्रकार धराशायी कर दिया, जिस प्रकार कि कोर्टेज ने मान्टेजमा को चित्त कर दिया था। दूसरी ओर, कंपनी ने अपने असीम क्षेत्र के अधिग्रहण को, विनम्रतापूर्वक, इंग्लैण्ड के अधिकार-क्षेत्र में सौंप दिया और अन्त में, जब प्लासी के युद्ध की एक शताब्दी पूरी हो गयी तो उसने अपने निर्मूलन को भी सहन कर लिया और भारत को इंग्लैण्ड की सरकार को समर्पित कर दिया।[18]

---

18. सन् 1857 में, गदर के बाद कंपनी को खत्म कर दिया गया था और इंग्लैण्ड की सरकार ने समस्त उपनिवेशों को सीधे अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिया था।

---

अजयसिंह द्वारा, किसान-ट्रस्ट, दिल्ली के प्रकाशन विभाग के लिए
निःशुल्क वितरण-हेतु प्रकाशित तथा रुचिका प्रिण्टर्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित
अप्रैल, 1985

# किसान ट्रस्ट के प्रकाशन

**जातिवादी कौन : एक विश्लेषण** (हिन्दी और अंग्रेजी)/
एक दृष्टा/रु० 2.00

**भारत का आर्थिक पतन कारण एवं समाधान** (हिन्दी)/
चौधरी चरण सिंह/रु० 1.00

**आर्थिक विकास के सवाल और बौद्धिक दिवालियापन** (हिन्दी)/
चौधरी चरण सिंह/रु० 1.00

**सरकारी सेवाओं में किसान-संतान के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण क्यों?**
(हिन्दी)/चौधरी चरणसिंह/निःशुल्क

**हाउ वी कांकर्ड इण्डिया** (अंग्रेजी)/जे० आर० शैले/निशुल्क
(भूमिका चौधरी चरणसिंह)

हिन्दी साप्ताहिक — **असली भारत** वार्षिक शुल्क चालीस रुपये

**नोट** :—रजिस्टर्ड डाक द्वारा मंगाने पर 3.55 रु० अतिरिक्त भेजना होगा।

प्रकाशन विभाग
किसान ट्रस्ट दिल्ली
12, तुगलक रोड, नई दिल्ली—1100011